सबद
पीयर-रिव्यूड त्रैमासिक शोध पत्रिका
वर्ष- 1, अंक- 4 (अक्टूबर–दिसंबर 2026)
ISSN: 3139-5317 (Online), 3139-5325 (Print)

पब्बर घाटी की लोकगाथाओं में अभिव्यक्त लोकज्ञान

आरुषि
हिन्दी विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय शिमला

शोध-सार

हिमाचल प्रदेश की पब्बर घाटी अपनी विशिष्ट भौगोलिक परिस्थितियों, समृद्ध लोकसंस्कृति, देवपरंपरा तथा मौखिक साहित्य के लिए विशेष पहचान रखती है। यहाँ की लोकगाथाओं में स्थानीय समाज के जीवनानुभवों तथा पारंपरिक ज्ञान की विविध अभिव्यक्तियाँ विद्यमान हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र में पब्बर घाटी की लोकगाथाओं में अभिव्यक्त लोकज्ञान एवं जीवन-दृष्टि का विश्लेषण किया गया है। इसमें धार्मिक विश्वास, देवपरंपरा, सामाजिक संबंध, पारंपरिक आजीविका, प्रकृति एवं पर्यावरण संबंधी ज्ञान के संदर्भ में लोकगाथाओं की भूमिका का विवेचन किया गया है। लोकगाथाएँ केवल साहित्यिक अभिव्यक्तियाँ नहीं हैं, बल्कि इनमें किसी समाज की सामूहिक स्मृति, अनुभवजन्य ज्ञान और सांस्कृतिक चेतना भी सुरक्षित रहते हैं। इनका अध्ययन हिमाचली लोकज्ञान परंपरा की विशिष्टता को समझने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

बीजशब्द: पब्बर घाटी, लोकगाथा, लोकज्ञान, देवपरंपरा, लोकसंस्कृति, मौखिक परंपरा, लोकविश्वास।

प्रस्तावना

लोकसाहित्य किसी भी समाज की सांस्कृतिक पहचान का महत्त्वपूर्ण आधार होता है। यह उस समाज के सामूहिक अनुभवों, मान्यताओं, विश्वासों तथा जीवन-पद्धतियों को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। लोकसाहित्य का निर्माण किसी एक व्यक्ति द्वारा नहीं, बल्कि सामूहिक जन-अनुभवों के आधार पर होता है। इसमें समाज की आशा-निराशा, हर्ष-विषाद, सुख-दुःख, जीवन-मरण तथा संघर्षों की सहज अभिव्यक्ति मिलती है। राहुल सांकृत्यायन के अनुसार, सभ्यता के प्रभाव से दूर रहने वाली निरक्षर जनता की आशा, निराशा, हर्ष-विषाद, जीवन-मरण, लाभ-हानि तथा सुख-दुःख की अभिव्यंजना जिस साहित्य में होती है, वही लोकसाहित्य कहलाता है। इस प्रकार लोकसाहित्य जनता का भाषा-साहित्य है, जो जनता के अनुभवों से निर्मित होकर उसी के जीवन को अभिव्यक्त करता है।[1]

लोकसाहित्य की विभिन्न विधाओं में लोकगाथा का विशेष स्थान है। लोकगाथाएँ किसी समुदाय की ऐतिहासिक घटनाओं, धार्मिक मान्यताओं, वीरता, प्रेम, त्याग, संघर्ष तथा सामाजिक जीवन से संबंधित कथात्मक अभिव्यक्तियाँ हैं। पब्बर घाटी की लोकगाथाओं पर चर्चा करने से पूर्व गाथा शब्द का अर्थ समझना आवश्यक है। कोशगत अर्थों में गाथा का आशय धार्मिक श्लोक अथवा ऐसे छंद से है, जिसका संबंध वेदों से न हो।[2] मानक हिंदी शब्दकोश में लोकगाथा का अर्थ परंपरा से चले आ रहे उन गीतों से है, जो लोकसमाज में प्रचलित होते हैं।[3]

लोकगाथाओं का संबंध केवल मनोरंजन से नहीं है, बल्कि ये समाज के ज्ञान, अनुभव और सांस्कृतिक मूल्यों की वाहक भी हैं। भारतीय संस्कृति के विविध आयाम, जैसे प्राचीन जीवन-मूल्य, पंचमहायज्ञ, षोडश संस्कार, त्रिऋण की अवधारणा, आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धतियाँ, पारंपरिक शिक्षा प्रणाली तथा प्रकृति-संरक्षण की चेतना, लोकजीवन में विभिन्न रूपों में विद्यमान रहे हैं। ये ज्ञान-तत्त्व केवल शास्त्रीय ग्रंथों तक सीमित नहीं रहे, बल्कि लोकाचार, रीति-रिवाजों, अनुष्ठानों, गीतों और लोकगाथाओं के माध्यम से भी पीढ़ी-दर-पीढ़ी संचारित होते रहे हैं। लोकगाथाएँ लोकज्ञान परंपरा

की प्रमुख वाहक हैं। इनमें समाज के दीर्घकालीन अनुभव, जीवन-मूल्य, आस्थाएँ, व्यवहार एवं सांस्कृतिक प्रक्रियाएँ कथात्मक रूप में अभिव्यक्त होती हैं। ये लोकजीवन के संचित ज्ञान का ऐसा भंडार हैं, जो मौखिक परंपरा के माध्यम से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचता रहा है। इनके पात्र और कथानक समाज की सामूहिक स्मृति तथा सांस्कृतिक चेतना को जीवंत बनाए रखते हैं।

सत्य गुप्ता के अनुसार, परंपरागत होने के कारण लोकगाथाएँ प्रत्येक देश और प्रत्येक युग में बड़े चाव से सुनी तथा गाई जाती रही हैं। प्राचीन काल में राजा, सेनापति, मंत्री, कवि तथा ऋषि-मुनि भी लोकगाथाओं को सुनते थे और उनसे प्रेरणा ग्रहण करते थे। उस समय लोकगाथाएँ सामाजिक चेतना एवं आदर्शों को प्रस्तुत करती थीं।[4] इससे स्पष्ट होता है कि लोकगाथाओं का महत्त्व केवल साहित्यिक संरचना तक सीमित नहीं है, बल्कि वे समाज के सामूहिक अनुभवों और जीवन-दृष्टि को भी अभिव्यक्त करती हैं। हिमाचल प्रदेश के शिमला जनपद में स्थित पब्बर घाटी अपनी विशिष्ट भौगोलिक, सामाजिक-सांस्कृतिक एवं लोकपरंपरागत विशेषताओं के लिए जानी जाती है। पब्बर नदी के किनारे विस्तृत यह घाटी रोहड़ू, चिड़गाँव, जुब्बल तथा आसपास के ग्रामीण क्षेत्रों की लोकसंस्कृति से संबंधित है। यह क्षेत्र प्राकृतिक सौंदर्य, पर्वतीय जीवन-शैली, कृषि-प्रधान अर्थव्यवस्था, बागवानी, पशुपालन तथा समृद्ध देवपरंपरा के लिए प्रसिद्ध है।

पब्बर घाटी में निवास करने वाले समुदायों का जीवन प्रकृति के साथ गहरे सामंजस्य पर आधारित है। इसका प्रभाव उनकी लोकपरंपराओं, धार्मिक आस्थाओं तथा सांस्कृतिक व्यवहारों में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। यहाँ प्रचलित वीरगाथाएँ, देवगाथाएँ तथा ऐतिहासिक गाथाएँ केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं हैं, बल्कि वे सामाजिक संरचना, धार्मिक विश्वास, नैतिक मूल्यों तथा पर्यावरणीय ज्ञान के महत्त्वपूर्ण स्रोत भी हैं।

लोकज्ञान एवं लोकगाथाओं का अंतर्संबंध

लोकज्ञान से अभिप्राय उस पारंपरिक एवं अनुभवजन्य ज्ञान से है, जिसका निर्माण किसी समुदाय के दीर्घकालीन जीवनानुभवों के आधार पर होता है। यह ज्ञान प्रकृति, पर्यावरण, कृषि, पशुपालन, सामाजिक व्यवहार, धार्मिक आस्थाओं तथा मानवीय संबंधों से संबंधित होता है। लोकज्ञान का स्वरूप सामूहिक होता है और इसका हस्तांतरण मुख्यतः मौखिक परंपरा, लोकाचार, अनुष्ठानों, गीतों, कथाओं तथा लोकगाथाओं के माध्यम से होता है। लोकगाथाएँ लोकज्ञान के संरक्षण एवं प्रसार का महत्त्वपूर्ण माध्यम हैं। इनमें किसी समुदाय की सामूहिक स्मृति, सामाजिक संरचना तथा सांस्कृतिक मूल्यों का संचित रूप मिलता है। इनके कथानक एवं पात्र लोकसमाज के अनुभवों को कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। इनके माध्यम से समाज अपनी मान्यताओं को पुनः स्थापित करता है तथा नई पीढ़ी को अपने सांस्कृतिक मूल्यों से परिचित करवाता है। लोकगाथाओं में धार्मिक आस्थाओं, सामाजिक उत्तरदायित्वों, पारंपरिक आजीविका तथा प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग से संबंधित ज्ञान विभिन्न प्रसंगों के माध्यम से सामने आता है। इस प्रकार लोकगाथाएँ लोक और शास्त्र के बीच सेतु का कार्य करती हैं। इनमें जीवन से अर्जित व्यावहारिक ज्ञान लोकभाषा एवं लोकशैली में अभिव्यक्त होकर जनसामान्य तक पहुँचता है।

1. देवपरंपरा एवं धार्मिक जीवन-दृष्टि

पब्बर घाटी का धार्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन स्थानीय देवपरंपरा से गहराई से जुड़ा हुआ है। यहाँ के समाज में देवी-देवताओं, ग्रामदेवताओं तथा कुलदेवताओं की मान्यताएँ सामाजिक जीवन का महत्त्वपूर्ण आधार रही हैं। देवपरंपरा केवल धार्मिक आस्था का विषय नहीं है, बल्कि वह स्थानीय समाज की सामूहिक चेतना एवं सांस्कृतिक पहचान से भी

संबंधित है। पब्बर घाटी की लोकगाथाओं में देवताओं के प्रति श्रद्धा, दैवीय संरक्षण तथा सामूहिक धार्मिक आयोजनों का विशेष उल्लेख मिलता है। भूंडा गाथा में देवता के उत्सव के लिए दूर-दूर तक निमंत्रण पहुँचने का वर्णन मिलता है। गाथा के बोल हैं—

"गोड़ौ किओ नोगरो दो जीभ रो छांदो,

देवा श्री खुभबली की डेउण जालों।"[5]

इन पंक्तियों में भूंडा उत्सव के निमंत्रण का उल्लेख किया गया है। नायक कहता है कि भूंडे का निमंत्रण पूरे नगर तथा दूर-दूर तक पहुँच गया है। यह देवता का महत्त्वपूर्ण उत्सव है, इसलिए वहाँ जाना आवश्यक है। इस प्रसंग से स्पष्ट होता है कि देवपरंपरा स्थानीय समाज में सामूहिक सहभागिता, धार्मिक एकता तथा सांस्कृतिक निरंतरता का आधार रही है।

इसी प्रकार रंजी वजीर की लोकगाथा में देवता लांकुड़ा वीरजी द्वारा नायक की सहायता करने का प्रसंग मिलता है। गाथा के अनुसार, जब रंजी वजीर संकट में पड़ता है, तब देवता उसकी सहायता के लिए आते हैं और युद्ध में विजय दिलाकर स्वयं अंतर्धान हो जाते हैं। गाथा के बोल हैं—

"दूणी रो देउरो जालो बिथरी रो शिरा,

किया छोपो रांजी बजीरा तेरो सेउ लाकड़ा वीर।"[6]

इस प्रसंग में देवशक्ति के प्रति लोकसमाज का विश्वास अभिव्यक्त होता है। लोकमान्यता के अनुसार, देवता संकट के समय अपने भक्तों की सहायता करते हैं। इस प्रकार लोकगाथाएँ धार्मिक आस्था के साथ-साथ साहस, विश्वास और संकटों से संघर्ष करने की प्रेरणा भी प्रदान करती हैं।

देवता गोली नाग की गाथा में बुशहर राज्य पर सूखे का संकट आने का प्रसंग मिलता है। जब राज्य में वर्षा का अभाव होता है, तब राजा विभिन्न आराध्य देवताओं से इस समस्या के समाधान के विषय में पूछता है। गाथा के बोल हैं—

"सुगंरा महेशरो पूछौ, जाबला नरेणौ,

सौरगो रे खौबरो केजा देयों दोषे जाणौ।

सगुरै महेशरो देयो चोडियौ जवाबौ,

सौरगो री चोटी बोठा नाउरौ रा नागौ।

दैयो लाऔ बसारू सारे मूलकौ रो ठेयो,

जौलोरी चौकी बोठा गोली नागो देयों।

जैबेल एला साईबा इंद्रों खू पाणे,

रोहडू टैकिले जातरो तेरे बारी रे निशाणे।"[7]

इस लोकगाथा में सूखे की समस्या से निपटने के लिए विभिन्न देवताओं से सहायता माँगने का वर्णन है। सुगरां महेश्वर

और जाबल नारायण इस समस्या के समाधान के लिए नावर के नाग देवता का संकेत देते हैं। इसके बाद बुशहर का राजा गोली नाग के पास पहुँचता है और उनसे वर्षा करवाने की प्रार्थना करता है। राजा यह वचन देता है कि यदि वे वर्षा करवाने में सफल होते हैं, तो रोहड़ू का मेला उनके नाम पर आयोजित किया जाएगा। यह प्रसंग लोकसमाज की उस धार्मिक जीवन-दृष्टि को अभिव्यक्त करता है, जिसमें प्राकृतिक संकटों का समाधान देवशक्ति और सामूहिक आस्था के माध्यम से खोजा जाता है। साथ ही, यह भी स्पष्ट होता है कि देवपरंपरा स्थानीय समाज में जल, वर्षा और कृषि जैसे जीवनोपयोगी प्राकृतिक तत्त्वों के महत्त्व से जुड़ी हुई है।

2. सामाजिक संबंध एवं सामूहिक लोकज्ञान

लोकगाथाएँ लोकसमाज की सामाजिक संरचना तथा सामूहिक लोकज्ञान को अभिव्यक्त करने का महत्त्वपूर्ण माध्यम हैं। इनमें परिवार, नातेदारी, समुदाय, सामाजिक मर्यादा तथा पारस्परिक सहयोग से संबंधित अनुभवों का चित्रण मिलता है। प्रेम, त्याग, निष्ठा, सहयोग तथा उत्तरदायित्व जैसे गुण सामाजिक जीवन के आदर्शों को अभिव्यक्त करते हैं। पब्बर घाटी की तोतू भाई की लोकगाथा में निर्धनता, श्रम, मानवीय संवेदना तथा सामूहिक सहयोग का अत्यंत मार्मिक चित्रण मिलता है। तोतू जीवनभर मेहनत करके अपने घर के निर्माण की सामग्री एकत्रित करता है, लेकिन अचानक बीमार पड़ जाता है। घर बनाने की उसकी इच्छा अधूरी रह जाती है। बीमारी की गंभीर अवस्था में वह अपनी असहायता व्यक्त करते हुए कहता है—

"खाईदौ न पीदौं मेरे पराणी दै न लोगू,

जों पापे बाडु ओं मेरी जिवडी रो ढोबू।"[8]

इन पंक्तियों में तोतू की शारीरिक पीड़ा और जीवन के प्रति असहायता अभिव्यक्त होती है। वह अपनी अंतिम अवस्था में पहुँच चुका है और अपनी अधूरी इच्छा को लेकर चिंतित है। इस परिस्थिति में गाँव के लोग सामूहिक रूप से उसकी सहायता के लिए आगे आते हैं तथा घर बनाने की उसकी अंतिम इच्छा को पूरा करने का प्रयास करते हैं। ग्रामीणों के सामूहिक सहयोग की भावना इन पंक्तियों में दिखाई देती है—

"दाए भाए गौढ रै देअ लै बौड़ा दिलासा,

म्हारे आंधौ रा रौणी देइय ओबरा रा आसा।"[9]

यह प्रसंग स्पष्ट करता है कि ग्रामीण समाज में सामूहिकता और परस्पर सहयोग का कितना महत्त्व रहा है। किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत समस्या को समुदाय द्वारा अपनी जिम्मेदारी समझना लोकसमाज की मानवीय संवेदना और सामाजिक उत्तरदायित्व का परिचायक है। इसी लोकगाथा में स्थानीय वैद्य बलीराम के माध्यम से पारंपरिक चिकित्सा व्यवस्था तथा वैद्य के नैतिक कर्तव्य का परिचय मिलता है। तोतू का छोटा भाई उसकी बीमारी ठीक करने के बदले वैद्य बलीराम को सोने की खूंखरी देने का प्रस्ताव रखता है, परंतु वैद्य इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर देता है। वह अपने वैद्य धर्म को सर्वोपरि मानते हुए कहता है—

छोटा भाई—

"जौबे तोतू हांडिय डेआ लो देवली कै जांअ,

सुनै मोड़िए खोखरे देऊ बै बौली राम तांअ।"

वर्ष- 1, अंक- 4 (अक्टूबर–दिसंबर 2026)
ISSN: 3139-5317 (Online), 3139-5325 (Print)

बलीराम—

"सुनै मोड़िय खोखरे तेरे, मूं बी ना चांई,

पुडे देउ ला औषधि रे धर्मा री तांई।"[10]

इस प्रसंग में वैद्य बलीराम का चरित्र पारंपरिक चिकित्सा पद्धति के नैतिक पक्ष को सामने लाता है। उसके लिए चिकित्सा केवल आर्थिक लाभ का साधन नहीं, बल्कि सेवा और धर्म का कार्य है। इससे स्पष्ट होता है कि लोकगाथाओं में सामाजिक नैतिकता, मानवीय संवेदना तथा पारंपरिक चिकित्सा से संबंधित ज्ञान भी सुरक्षित रहता है।

3. पारंपरिक आजीविका एवं श्रम संबंधी लोकज्ञान

पब्बर घाटी का पारंपरिक जीवन कृषि, बागवानी तथा पशुपालन पर आधारित रहा है। यहाँ के लोगों का जीवन प्राकृतिक परिस्थितियों और स्थानीय संसाधनों के अनुरूप विकसित हुआ है। कृषि एवं पशुपालन से संबंधित ज्ञान का हस्तांतरण मुख्यतः पारिवारिक और सामुदायिक अनुभवों के माध्यम से होता रहा है। ऋतु-परिवर्तन, भूमि की प्रकृति, फसलों की देखभाल तथा पशुधन के पालन से संबंधित अनुभव स्थानीय लोकज्ञान का महत्त्वपूर्ण हिस्सा हैं।

पारसा चंद की लोकगाथा में किसान जीवन के संघर्ष और श्रमशीलता का सुंदर चित्रण मिलता है। किसान सुबह से रात तक खेतों में परिश्रम करता है। उसके हाथ में बीजों की पोटली तथा पाथा नामक पारंपरिक माप-पात्र होता है, जिसके माध्यम से वह खेतों में बीज बोता है। गाथा के बोल हैं—

"सर्दी राते पौरसे चौंदा लागो न निजौ बे,

सारदी राते पौरसे चौंदा लागो न निजौ बे।

बोले पाथौ दे कोरे पोटली नारो, बागो खे बीजो बे।"[11]

इन पंक्तियों में किसान के श्रम तथा कृषि संबंधी अनुभवजन्य ज्ञान की अभिव्यक्ति मिलती है। पारंपरिक किसान अपनी स्थानीय समझ और अनुभव के आधार पर बीजों की मात्रा तय करता था तथा बुआई का कार्य करता था। पाथा जैसे पारंपरिक माप-पात्र का उल्लेख स्थानीय कृषि पद्धति और मापन संबंधी लोकज्ञान को सामने लाता है।

इसी प्रकार चौरणु वीर की लोकगाथा में पशुपालक और उसके पशुओं के बीच आत्मीय संबंध का चित्रण मिलता है। चौरणु वीर अपनी भेड़ों की रक्षा के लिए शेर से भी संघर्ष करने को तैयार रहता है। इस प्रसंग में वह अपने कुत्ते सिमरू को संबोधित करते हुए कहता है—

"कुकरा मेरै छिमबरुआ तू धरमौ रो भाए,

काठो लागो लौड़ने खी मू एखली न पाए।"[12]

इन पंक्तियों में चौरणु वीर अपने कुत्ते से आग्रह करता है कि वह शेर के साथ संघर्ष करते समय उसे अकेला न छोड़े। इस गाथा में पशुपालक का अपने पशुधन के प्रति प्रेम, उसकी सुरक्षा के प्रति उत्तरदायित्व तथा पशुओं के साथ उसके आत्मीय संबंधों की अभिव्यक्ति मिलती है। इसके अतिरिक्त जिंदु काका की लोकगाथा में पहाड़ी बेड़ोली अर्थात् रोटी का उल्लेख मिलता है। स्थानीय जीवन में जब पुरुष एवं स्त्रियाँ ऊँचे पर्वतीय क्षेत्रों में पशुओं के लिए चारा एकत्रित करने

हेतु तीन-चार दिनों तक रहते थे, तब वे अपने साथ घर से बेड़ोली बनाकर ले जाते थे। यह पारंपरिक खाद्य पदार्थ मोटे अनाज, गेहूँ तथा जौ से तैयार किया जाता था और कई दिनों तक सुरक्षित रहता था। गाथा के बोल हैं—

"घासा की गैडोली, घासा की गैडोली,

जिंदू काका बालमू काका घास की गैडोली,

मूके आणै बालमू काका साज़ी बासी बैडोली।"[13]

इस प्रसंग से स्थानीय खाद्य परंपरा तथा पर्वतीय जीवन की व्यावहारिक आवश्यकताओं का ज्ञान प्राप्त होता है। बेड़ोली का निर्माण इस बात का उदाहरण है कि स्थानीय समाज ने अपनी भौगोलिक परिस्थितियों और श्रम की आवश्यकताओं के अनुसार खाद्य पदार्थों का विकास किया था। यह पारंपरिक खाद्य ज्ञान स्थानीय जीवन की आत्मनिर्भरता को भी दर्शाता है। इस प्रकार पारंपरिक आजीविका से संबंधित लोकगाथाएँ कृषि, पशुपालन, खाद्य परंपरा तथा श्रम के प्रति सम्मान जैसे अनेक जीवनोपयोगी ज्ञान-तत्त्वों को संरक्षित करती हैं।

4. प्रकृति एवं पर्यावरण संबंधी लोकज्ञान

पर्वतीय समाज का जीवन अपने प्राकृतिक परिवेश से गहराई से जुड़ा होता है। पर्वत, नदियाँ, वन, जलस्रोत, कृषि भूमि और स्थानीय जलवायु उसकी जीवन-पद्धति को प्रभावित करते हैं। पब्बर घाटी की भौगोलिक परिस्थितियों के संदर्भ में प्रकृति और मनुष्य के संबंधों का अध्ययन विशेष महत्त्व रखता है। लोकगाथाओं में प्रकृति कभी जीवन के आधार के रूप में सामने आती है, तो कभी मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम बनती है। इनमें जंगल, वन्यजीव, औषधीय वनस्पतियों तथा प्राकृतिक संसाधनों का उल्लेख मिलता है। ये प्रसंग स्थानीय समाज की पर्यावरणीय समझ और प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता को अभिव्यक्त करते हैं। राजा भरथरी की लोकगाथा में वन्यजीवों की रक्षा तथा वन-संरक्षण का प्रसंग मिलता है। जब राजा भरथरी शिकार के लिए जंगल में जाते हैं, तब रानी पिंगला उनसे किसी भी वन्यजीव को क्षति न पहुँचाने का आग्रह करती है। गाथा के बोल हैं—

रानी पिंगला—

"चाकरा झांगा, राजनेता तीसरा,

जाणी झाइयां तीन कि चार,

एक न झांगे काले हिरणा को,

सेउ हुआ वन का सरदार,

संगे रुख हिरणेटू चार।"[14]

इस प्रसंग में वन्यजीवों के प्रति करुणा तथा उनकी रक्षा की भावना अभिव्यक्त होती है। इससे यह संकेत मिलता है कि लोकसमाज में वन और वन्यजीवों को केवल उपयोग की वस्तुएँ न मानकर प्राकृतिक जीवन-व्यवस्था का आवश्यक अंग समझा जाता रहा है। पब्बर घाटी में भी वन्यजीवों और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण से संबंधित अनेक लोकमान्यताएँ प्रचलित हैं। शिकार को अनुचित मानने तथा देवप्रकोप से जोड़ने वाली धारणाएँ भी प्रकृति के प्रति सामाजिक नियंत्रण और संरक्षण की भावना को प्रकट करती हैं। नूरपा की लोकगाथा में औषधीय वनस्पतियों के

महत्त्व का उल्लेख मिलता है। पर्वतीय क्षेत्रों में रहने वाले पशुपालक ऊँचे स्थानों पर भेड़-बकरियों के साथ जाते थे और वहाँ उपलब्ध औषधीय वनस्पतियों का उपयोग करते थे। गाथा में औषधि के प्रभाव का वर्णन करते हुए कहा गया है—

"मूडां गाडा दुखणा राडां गाड़ा री गाई,

ओं मूडां गाडा दुखणा राडां गाड़ा री गाई,

गे आणे औशटी बिजुआ भाईया कांडे री दुवाई,

आणे ओशटी बिजुआ भाईया कांडे री दुवाई।"[15]

इस प्रसंग में नूरपा के सिर में तेज दर्द होने पर वह अपने भाई बीजू से कांदे की औषधि लाने का आग्रह करती है। इस प्रकार गाथा में स्थानीय औषधीय वनस्पतियों और पारंपरिक चिकित्सा संबंधी ज्ञान का उल्लेख मिलता है। पब्बर घाटी में आज भी स्थानीय स्तर पर उपलब्ध औषधीय वनस्पतियों का पारंपरिक चिकित्सा में उपयोग किया जाता है। कुछ क्षेत्रों में हड्डियों से संबंधित चोटों के उपचार के लिए भी स्थानीय चिकित्सा पद्धतियों का सहारा लिया जाता है। इस संदर्भ में गोसारी गाँव स्थानीय चिकित्सा परंपरा के लिए प्रसिद्ध है। हालाँकि ऐसी चिकित्सा पद्धतियों के प्रभाव और सुरक्षा का मूल्यांकन वैज्ञानिक दृष्टि से भी आवश्यक है। इस प्रकार लोकगाथाएँ प्रकृति, वन्यजीवों, औषधीय वनस्पतियों तथा प्राकृतिक संसाधनों के प्रति स्थानीय समाज की व्यावहारिक समझ को अभिव्यक्त करती हैं।

निष्कर्ष

पब्बर घाटी की लोकगाथाओं में अभिव्यक्त लोकज्ञान एवं जीवन-दृष्टि का अध्ययन क्षेत्रीय लोकसंस्कृति और सामुदायिक चेतना को समझने की दिशा में महत्त्वपूर्ण है। लोकगाथाएँ किसी समाज के अनुभवों, विश्वासों, भावनाओं और परंपराओं को कथात्मक रूप में सुरक्षित रखने का कार्य करती हैं। इनके माध्यम से प्रकृति के साथ मनुष्य के संबंधों, सामाजिक व्यवहार, धार्मिक आस्थाओं, नैतिक मूल्यों और जीवन-संघर्षों का विश्लेषण किया जा सकता है।

प्रस्तुत अध्ययन से स्पष्ट होता है कि पब्बर घाटी की लोकगाथाओं में देवपरंपरा, धार्मिक विश्वास, सामाजिक सहयोग, पारंपरिक आजीविका, कृषि, पशुपालन, खाद्य परंपरा तथा पर्यावरणीय चेतना से संबंधित विविध ज्ञान-तत्त्व विद्यमान हैं। भूंडा, रंजी वजीर और गोली नाग की गाथाएँ धार्मिक विश्वास एवं देवपरंपरा को अभिव्यक्त करती हैं, जबकि तोतू भाई की गाथा सामाजिक सहयोग, मानवीय संवेदना तथा वैद्य धर्म के आदर्श को सामने लाती है। पारसा चंद, चौरणु वीर और जिंदु काका की गाथाओं में कृषि, पशुपालन, श्रम तथा पारंपरिक खाद्य ज्ञान की अभिव्यक्ति मिलती है। इसी प्रकार राजा भरथरी और नूरपा की गाथाएँ प्रकृति-संरक्षण तथा औषधीय ज्ञान के महत्त्व को स्पष्ट करती हैं। लोकगाथाओं का महत्त्व इस तथ्य में भी निहित है कि वे ज्ञान को केवल लिखित रूप में नहीं, बल्कि सामूहिक स्मृति और मौखिक संप्रेषण के माध्यम से संरक्षित करती हैं। इनमें निहित जीवन-दृष्टि को समझने के लिए उनके कथानकों, पात्रों, प्रतीकों और सांस्कृतिक संदर्भों का सूक्ष्म अध्ययन आवश्यक है। साथ ही, लोकगाथाओं को उनके स्थानीय परिवेश और वास्तविक सामाजिक संदर्भों से जोड़कर देखना चाहिए, ताकि उनके विश्लेषण में सामान्य धारणाओं के स्थान पर प्रमाण-आधारित निष्कर्ष प्रस्तुत किए जा सकें। वर्तमान समय में आधुनिकीकरण, संचार माध्यमों के विस्तार तथा जीवन-पद्धति में परिवर्तन के कारण मौखिक परंपराओं के स्वरूप में भी परिवर्तन हो रहा है। ऐसी स्थिति में लोकगाथाओं का संकलन, संरक्षण, दस्तावेजीकरण तथा विश्लेषण आवश्यक हो जाता है। यह कार्य केवल साहित्यिक

धरोहर के संरक्षण तक सीमित नहीं है, बल्कि लोकज्ञान की परंपरा को सुरक्षित रखने का भी महत्त्वपूर्ण प्रयास है। अंततः कहा जा सकता है कि पब्बर घाटी की लोकगाथाओं का व्यवस्थित संकलन और विश्लेषण हिमाचल प्रदेश की लोकज्ञान परंपरा के अध्ययन को समृद्ध कर सकता है। यह प्रयास क्षेत्रीय लोकसाहित्य के संरक्षण के साथ-साथ उसकी सांस्कृतिक, सामाजिक और मानवीय महत्ता को पहचानने में भी योगदान देगा।

संदर्भ सूची

1. राहुल सांकृत्यायन, हिंदी साहित्य का वृहद् इतिहास (षोडश भाग), काशी: नागरी प्रचारिणी सभा, 1981, पृ. 15–16।
2. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत-हिंदी कोश, दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, 1969, पृ. 342।
3. रामचंद्र वर्मा, मानक हिंदी शब्दकोश, प्रयाग: हिंदी साहित्य सम्मेलन, 1965, पृ. 425।
4. सत्य गुप्ता, खड़ी बोली का साहित्य, इलाहाबाद: हिंदुस्तान एकेडमी, 1964, पृ. 239।
5. साक्षात्कार: श्री मिचर सेन गिकटू, ग्राम दलगाँव, डाकघर कुटाड़ा, तहसील रोहड़ू, जिला शिमला।
6. साक्षात्कार: श्री विद्या सिंह सूर्याण, ग्राम क्याणी, डाकघर गवास, तहसील चिड़गाँव, जिला शिमला।
7. डॉ. भवानी सिंह, रोहड़ू क्षेत्र की लोकगाथाओं का सामाजिक अध्ययन, नई दिल्ली: संजय प्रकाशन, 2007, पृ. 232।
8. वही, पृ. 232।
9. वही, पृ. 232।
10. 12. डॉ. भवानी सिंह, रोहड़ू क्षेत्र की लोकगाथाओं का सामाजिक अध्ययन, नई दिल्ली: संजय प्रकाशन, 2007, पृ. 128।
11. 13. साक्षात्कार: श्री योगेश थरटवान, ग्राम जाखी, तहसील चिड़गाँव, जिला शिमला।
12. 14. डॉ. भवानी सिंह, रोहड़ू क्षेत्र की लोकगाथाओं का सामाजिक अध्ययन, नई दिल्ली: संजय प्रकाशन, 2007, पृ. 164।
13. 15. साक्षात्कार: श्री शेर सिंह बुगवान, ग्राम डिसवानी, तहसील चिड़गाँव, जिला शिमला।